Jan 2020 - Mar 2020, Vol 6, No. 1, 72-78 ISSN : 2394 -9449

Electronic Journal of Advanced Research

An International Peer review E-Journal of Advanced Research

Research Articles

इक्कीसवीं सदी की कहानियों में वृद्धावस्था की समस्यायों की एक झलक

शिप्रा द्विवेदी[1] , शताक्षी त्रिपाठी[1]

1. शा. ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

Received : 15-Mar-2020	Revised : 22-Mar-2020	Accepted : 26-Mar-2020

सारांश

जीवन की सांध्यबेला अर्थात वृद्धावस्था बड़ी भयावह अवस्था है। इस अवस्था में मनुष्य की शारीरिक, तथा आर्थिक स्थिति कमजोर हो जाती है और वह अनेक प्रकार के रोगों से ग्रस्त हो जाता है। वृद्धों के लिए शरीरिक शिथिलता एक बड़ी समस्या है परंतु आज के उपयोगितावादी तथा उपभोक्तावादी समाज में वृद्धों की परिवार में उपेक्षा की भयावह स्थिति है। 'जिन संतानों के पालन–पोषण के लिए उन्होंने दिन का चैन व रात की नींद हराम की है, स्वयं भूखे रहकर उन्हे खिलाया है, स्वयं गीले में सोकर उन्हें सूखे बिस्तर पर सुलाया है, मेहनत–मजदूरी करके उन्हें स्वावलंबी बनाया है, वे ही उन्हें तरह–तरह के कष्ट दे रहे हैं। उलाहनाएं व प्रताड़नाएं दे रहे है। दो रोटी के लिए तरसा रहे हैं। इतना ही नही उन्हें घर से निकाल रहें है। वृद्धाश्रम में रहने के लिए अथवा सड़कों पर भीख मांगने के लिए मजबूर कर रहे हैं। '[1] ऐसी स्थिति में वृद्धजन शारीरिक पीड़ा के साथ–साथ आर्थिक तथा मनोवैज्ञानिक समस्याओं से भी ग्रस्त हो जाते हैं।

शब्द कुंजी : वृद्धावस्था , वृद्धाश्रम , वृद्धजन

प्रस्तावना

बीसवीं सदी के परिदृश्य में बुजुर्गों की समस्या अंतरराष्ट्रीय समस्या का रूप धारण कर चुकी है। 1982 में आस्ट्रेलिया की राजधानी विएना में वृद्धावस्था की समस्याओं पर आयोजित विश्व सम्मेलन इसका ज्वलंत उदाहरण है। इसी वर्ष संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा ने वृद्धावस्था के बारे में अंतराष्ट्रीय कार्ययोजना को मंजूरी दी जिसे 'विएना कार्ययोजना' के नाम से जाना जाता है। विश्व स्तर पर वृद्धों की बढ़ती समस्याओं को देखते हुए संयुक्त राष्ट्र संघ ने सन 1999 को वृद्धों के सम्मान में अतरराष्ट्रीय वृद्ध वर्ष घोषित किया। भारत ने भी वर्ष 2000 को राष्ट्रीय वृद्ध वर्ष के रूप में घोषित किया। इस प्रकार इक्कीसवीं सदी के प्रारंभ में ही वृद्धावस्था की समस्याओं पर विचार–विमर्श शुरू हो गया। आज वृद्धावस्था की समस्याओं ने विकराल रूप धारण कर लिया है। जिसके चलते हमारे नैतिक तथा धार्मिक मूल्यों की पुर्नप्रतिष्ठा की आवश्यकता अनुभव की जा रही है और वृद्धों की समस्याओं के कारणों तथा उपायों पर भी चर्चा की जा रही है। वर्तमान हिन्दी कहानी में वृद्धों की समस्याओं को लेकर काफी गंभीर लेखन हुआ है। जो वृद्धावस्था की समस्याओं की जड़ों को खंगालने के साथ–साथ उसके वर्तमान तथा भविष्य पर भी प्रकाश डालती है। इन कहानियों में वृद्धों के प्रति युवा पीढ़ी के उपेक्षापूर्ण रवैये के साथ ही वृद्धों की पीड़ा तथा व्यथा को भी रेखांकित किया गया है।

आज व्यक्ति, परिवार तथा समाज के धरातल पर दलदल का साम्राज्य है। व्यक्ति तनाव, अवसाद, बेचैनी तथा कुंठा से ग्रस्त है। 'वर्तमान पारिवारिक स्थितियां और सामाजिक समीकरण पारम्परिक मूल्यों को दरकिनार करते हुए परिवार विघटन और समाजिक विखण्डन की ओर उन्मुख है। स्त्री–पुरुष की पारस्परिक संपूरकता शनैः–शनैः समाप्त होती जा रही है, स्वार्थपरता संतानों में बढ़ रही है। और बुजुर्ग पीढ़ी उपेक्षित होकर बच्चों की कृतघ्नता का शिकार बन रही है। एक अजीब–सी बेचैनी सारे परिवार–तंत्र को ध्वस्त करती दिखाई देती है।'[2] यह अराजक स्थिति हमारे बदलते जीवन–मूल्यों तथा मानव –मूल्यों का परिणाम है। हमारी संस्कृति के पाश्चात्यीकरण ने हमारे घर–परिवार तथा समाज की रीढ़ पर प्रहार किया है। डॉ. सरिता वशिष्ठ अपने एक लेख में इस ओर ध्यान आकर्षित करते हुए कहती हैं– 'पश्चिम से आई ये आंधी कहां जाकर रुकेगी कुछ नही कहा जा सकता। हमारे घर, हमारे परिवार हमारे मंदिर हैं, पूजा स्थल है, देवालय है जहां के देवी–देवता हमारे बुजुर्ग है। और जहां सदाचार और शिष्टाचार के शिखर देखे जा सकते है। संयुक्त परिवारों से हमारे देश का गौरव है लेकिन आज ये सब खंडित होते जा रहे है।'[3] हमारे व्यक्तिगत, पारिवारिक तथा समाजिक सरोकारें में व्यापक परिवर्तन हुए हैं, जिनका अंश मात्र ही सकारात्मक है अधिकतर हमारे लिए नुक्सानदेह ही साबित हुआ है। वस्तुतः हमारा युग चहुंमुखी संक्रमण को झेल रहा है।

बुजुर्गों के प्रति हमारा उपेक्षापूर्ण व्यवहार उनके जीवन को तो नरक बना ही रहा है साथ ही स्वयं को भी एक ऐसी अंधी खाई में धकेल रहें है जहां सिर्फ पैसा है, संबंधों की ऊष्मा और स्नेह का स्पर्ष नही। प्रयाग शुक्ल लिखते हैं– 'आज के कथा साहित्य में– उन कृतियों की भी कमी नही है, जिनके केन्द्र में वे बुजुर्ग स्त्री–पुरुष है, जिनकी संतानें परदेश चली गई हैं, या वहीं बस गई हैं और वे अपने अकेले या दुकेलेपन (पति–पत्नी) में भी 'अकेलेपन' को झेलते हुए, उसका सामना करते हुए, उनका अकेलापन हमारे मन में ऐसी टीस पैदा करता है, कि हम अपने समय को, अपने दौर को, एक नयी तरह से देखने और अनुभव करने लगते हैं। जहां यह समस्या एकआयामी नहीं रह जाती, वह कई आयामों को प्रकट करने लगती है।'[4]

इस संदर्भ में सावित्री रांका की कहानी 'समाधान' उल्लेखनीय है। वृद्ध दंपत्ति भगत बाबू और सुजाता विदश से लौट रहे अपने बहू–बेटे के लिए अपने घर को इतना सजाते–संवारते है और तमाम सुख–सुविधाओं का इंतजाम करते हैं, कि शायद वे यहीं रहने के लिए राजी हो जाएं। परंतु भगत बाबू के उत्साह पर उस समय पानी पड़ जाता है जब शाम को बेटा कहता है कि 'डॉ. ने जया को सीढ़ियां चढ़ने के लिए मना किया है। थोड़ा इधर–उधर घूम कर होटल के कमरे में ही आराम कर लेंगे।'[5] अगले ही दिन बेटे द्वारा वापिस लौटने की घोषणा सुनकर भगत बाबू टूटे स्वर में जो कहते हैं, वह हमारे समय में इस प्रगाढ़ रिष्ते के खोखलेपन को उजागर करता है–'बेटा कुछ दिन और रुको। कौन –सा रोज–रोज आना होता है। चार दिन में मुश्किल से दो दिन ही तुमने हमारे साथ बिताए होंगे। हमारे रिश्ते का यह कौन–सा सत्य है। न तुमने मां का कोई दुख–दर्द जानना चाहा, न मेरा मन।'[6] वस्तुतः 'हम अपनी जिम्मेवारियों को भूल जतो हैं, उन हाथों को भूल जाते है। जिन्होंने चलना सिखाया, स्व का अहसास कराया। इस लायक बनाया कि अच्छे –बुरे का निर्णय कर सकें। ऋृण उतारने की बात करना तो प्रेम, त्याग, और समर्पण की उस भावना की तौहीन ही होगी, जिसने हमारी चिंता में दिन को दिन और रात को रात नही समझा। जो खुद जागकर हमें सुलाते हैं '[7] संवेदनहीन युवा पीढ़ी अपने मां–बाप की सारी उम्मीदों को नकारते हुए उन्हें अकेला छोड़ देती है।

यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र की कहानी 'स्वर्ण नदी रेत की' पुनिता का इकलौता बेटा विदेश जाकर मां–बाप को बिना बताये शादी कर लेता है और उन्हें खबर तक नहीं देता। पुनिता अपनी सहेलियों के बीच झूठ बोलने को विवश है। लेखक के शब्दों में– 'पुनिता का एक मात्र बेटा अशेष जिस पर उसने सारे भविष्य के सपने, आशाएं और महत्वाकांक्षाएं टिका रखी थी, अमरीका जाकर बस गया। वहां किसी गुजराती लड़की से शादी कर ली और मां से नाता ही तोड़ लिया हो। शादी की सूचना तक नहीं दी और पुनिता को झूठ बोलना पड़ा कि फोन तो आया था, पर वह उस समय नही जा सकी क्योंकि वह स्वयं ही व्यस्त थी। उसने अपनी

प्रतिष्ठा और अहं की रक्षा के लिए यह भी झूठ बोला था कि उसने तो टिकट भी भेज दिये थे। वे भी आने जाने के। [8]

इन कहानियों में बहू–बेटे के उत्पीड़न के शिकार वृद्धों की स्थिति हमारी सभ्यता को शर्मशार करती है। बहू–बेटे द्वारा सारी संपत्ति लूट लेने के बाद घर में कैद एक बुढ़िया को जब सामाजिक संगठनों द्वारा पुलिस स्टेषन लाया जाता है तो वह वापिस घर जाने से इंकार करते हुए कहती है– 'वे नर–पिशाच मुझे मार डलेंगे। वह बहू डायन मुझे नोंच–नोंच कर खा जायेगी मुझ पर दया करों। मुझे घर मत भेजो। मुझे बचा लो। बुढ़िया पर तरस खाओ।'[9] परिवार में बहू–बेटों के जुल्म के शिकार ये वृद्धजन दोहरे उत्पीड़न को झेलते हैं। अपने बच्चों के प्रति स्नेह और आकांक्षाओं से भरे उनके मन को जब ठेस पहुंचाती है तो वे रुदन कर उठते हैं। 'पागलखाना' कहानी का सेवानिवृत्त वृद्ध पात्र अपने परिवार के उपेक्षित रवैये से तंग आकर पागल हो जाता है। पागलखाने में उसकी गतिविधियां, हरकतें और बड़बड़ाहट पूरी सभ्यता के पागलनपन को उजागर करती हैं। उसका कहना कि 'यह पागलखाना है? यह पागलखाना नहीं. ....पगलखाना तो वह दुनिया है जिसमें मैं अभी तक रह रहा था.....पगल जो कुछ करते हैं उनकी अच्छाई –बुराई का डन्हें ज्ञान नही होता.....भले–बुरे की पहचान से परे होते हैं वे.....पर नर्स.....उन्हें क्या कहोगी जो सब कुछ समझकर भी कुछ नहीं समझते.....असली पागल यही होश वाले होते है.....हां नर्स ....मेरी पत्नी से कह दो कि मैं अब होश में आ गया हूँ, मेरे बेटों को यहां आने से मना कर दो.....मेरा दिल घबरा रहा है....मुझे यही सो जाने दो.....मुझे लौटकर उस पागलखाने में नहीं जाना.....। नही जाना!'[10]

'चलो अब मर जाएं' के वृद्ध दंपत्ति अपने बेटे–बहू के व्यवहार से इतना आहत है कि वे जहर खाकर आत्महत्या कर लेते हैं। वृद्ध बलवंत के बेटे को गोद में खिलाने की बड़ी चाह है। निकिता बिटिया को बस्ता लटकाये स्कूल जाता देखने की तमन्ना है। पर निर्मला तू यह मत समझ कि मैं मात्र शारीरिक पीड़ा से तंग आकर मृत्यु की कामना करता रहता हूं.....एक ही तो संतान है। वह घड़ी पर को मुस्कुराकर मेरी तबीयत पूछ ले तो मेरी पीड़ा कम हो जाए। मुझे बेटे की उपेक्षा अधिक दुख देती है निर्मल.....।'[11] सभ्यता की इससे बड़ी विसंगति क्या होगी जब एक पागलखाने को अपने घर से बेहतर बताया जा रहा हो और बहू–बेटे के अत्याचार से पीड़ित माता–पिता आत्महतया करने को विवश हों। इसी प्रकार अमरीक सिंह दीप की कहानी 'एक गिद्ध वेदना' का बाबूराम कैंसर की बीमारी तथा बच्चों की उपेक्षा के कारण फिनायल की पूरी बोतल पीकर आत्महत्या का प्रयास करता है।

निःसंदेह विकास के पथ पर अग्रसर मानवीय सभ्यता की विड़म्बना है कि उसने भौतिक–वैज्ञानिक जगत में तो अपने पांव जमाने में सफलता प्राप्त कर ली है परंतु इंसानियत का धरातल दल–दल में धंस चुका है। शारीरिक पीड़ा से त्रस्त ये वृद्ध सहानुभूति तथा सम्मान के दो शब्दों को तरस जाते है। परिवार में बहू–बेटे का दुर्व्यवहार उन्हें अंदर तक तोड़ देता है। भगवान देव चैतन्य की कहानी ' ठण्डी होती धूप' के वृद्ध पात्र के इन शब्दों में इस त्रासदी को अनुभव किया जा सकता है– 'एक बार मुझे जुकाम हो गया और जुकाम में मुझे दूध ठीक नहीं बैठता, मगर बहू ले आई। मेरे मना करने पर बोली कि चीनी डाल दी है अब इसे चुपचाप पी लो। पीना पड़ा। गले में कफ बहुत रहता है, इसलिए देर–सवेर खांसना पड़ता है। उस पर भी नाक–भौंह सिकोड़े जाते हैं। बाथ रूम में थोड़ी देर लग जाए तो झिड़कें सुनो.....। लाईट बड़ी देर तक जलाएं तो आफत.....। कई बार रात को नींद नही आती और सुबह के समय आंख लग जाती है तो ताना सुनो। थाली में खाना अधिक डाल दिया हो तो कम कराना कठिन और कम हो तो और मांगना मुसीबत .....भाई मेरे यहां तो पेट की गैस निकालना भी कठिन हो जाता है....। परमात्मा ऐसी परवशता किसी को न दें। '[12]

इसी प्रकार 'फेंकी हुई औरत' कहानी वृद्धावस्था में बेटे–बहू के साथ रह रही वृद्धा के संताप की कहानी है। जिसकी कीमत पुराने रद्दी अखबारों से ज्यादा नहीं है। बेटे–बहू तथा बच्चें के छुट्टियों के दूर पर चले जाने के बाद उसके टाईमपास के सभी साधनों को ताला लगा दिया जाता है। 'महरी की छुट्टी, फ्रिज बंद, अखबार बंद, टी.वी. बंद, पड़ोसियों से मेल–जोल पर पहरे के बाद यह रद्दी अखबार यहां कैसे रह गए?....क्या इसलिए कि रद्दी है ?'[13] सोचते हुए वृद्धा अपनी नियति को रद्दी अखबारों से जोड़ते हुए कहती है–'हमारा तुम्हारा भाग्य एक–सा है भइया ! काम निकल गया, फेंक दिए गए। आओ, हम मिलकर एक–दूसरे का दुख बांटे।'[14] वृद्ध घरेलू औरतें जिनकी परिवार के लिए कोई आर्थिक उपयोगिता नहीं है, उनकी हालत ये है कि उनकी बीमारी तथा जीवनयापन के लिए बहू–बेटे के पास पैसा नही है। बहू–बेटे द्वारा उन्हें या तो वृद्धाश्रम में छोड़ दिया जाता है अथवा बेसहारा सड़कों पर भीख मांगने के लिए छोड़ दिया जाता है। अंजु दुआ जैमिनी की 'इस द्वार से उस द्वार' में वृद्ध स्त्री को घर से बाहर निकाल दिया जाता है, मंदिरों में भीख मांगकर गुजारा करने को अभिशप्त है। डॉ. बानों सरताज की कहानी 'दर–ब–दर' में बहू–बेटे द्वारा मां को नागपुर की टिकट कटवाकर बस में बैठा दिया जाता है। बहू–बेटे नागपुर से पहले ही किसी स्टेशन पर उतर जाते हैं और कंडक्टर को कह जाते है कि बुढ़िया को नागपुर उतार दें। अपने मां–बाप को इस तरह सड़कों पर धकेलना न केवल संबंधों के घिनौनेपन को उजागर करता है अपितु सोचने पर विवश करता है कि हम विकास की ओर कदम बढ़ा रहें हैं या विनाश की ओर।

दूसरी तरफ कामकाजी वृद्ध स्त्रियों की स्थिति भी सुखद और संतोषजनक नही है। यहां वृद्ध औरतें दोहरा अभिशाप झेलती है। एक ओर वृद्धावस्था की पीड़ा, दूसरी ओर पितृसत्तात्मक पारिवारिक संरचना का दंश। सुरेखा सिन्हा की कहानी 'जीने का अंदाज' इस विषय को बड़ी बेबाकी से उठाती है। मिसेज बत्रा का आत्मकथन– 'दुनिया के लिए मैं लायन्स क्लब की प्रेसीडेन्ट हूं लेकिन घर में तो मेरी जगह धापू बाई की ही है। कहने को तो दो–दो बहुएं हैं, चार नौकर है लेकिन यदि सामने खड़े होकर काम न करवाऊं तो देखो कितना सामान खराब हो जाता है। '[15] और दूसरी तरफ अंतरराष्ट्रीय कान्फ्रेंस से लौटी मिसेज अग्रवाल पितृसत्तात्मक परिवार में वृद्ध स्त्री की स्थिति का प्रतिनिधित्व करती हैं– 'डॉ. मिसेज अग्रवाल पन्द्रह दिन में न्यूजीलैंड से कान्फ्रेंस अटैंड करके इण्डिया लौटी थीं। सोचा जाकर मिल आऊं। उनके घर पहुंची तो हाथ में झाड़न लिये, साड़ी ऊँची करके पटलियां कमर में खोंसी हुई, घर झाड़ने में लगी थी। डॉक्टर बेटा और डॉक्टर पिता दोनों ही पेपर पढ़ने में मग्न थे। '[16] इस प्रकार इक्कीसवी सदी की हिन्दी कहानी में वृद्धावस्था की समस्याओं के अनेक पहलुओं का रेखांकन हुआ है। हमारे युग में संयुक्त से एकल, फिर लिव–इन होते संबंधों, घटते नैतिक मूल्यों, औद्योगीकरण तथा नगरीकरण की प्रक्रिया के बीच हमारे बुजुर्गों का घटता सम्मान और उन पर बढ़ते अत्याचार हमारी दिशाहीनता तथा स्वार्थांधता को दर्शाते हैं। ये कहानियां प्रगतिशील और विकसित मानव सभ्यता के बर्बर तथा अमानवीय चेहरे को बेनकाब करती है। इन कहानियों में हमारी विरासत की सिसकियां दर्ज हैं, जो हमारे वर्तमान और भविष्य के लिए सुखद संकेत नही है। क्योंकि बुजुर्गों का अपमान, अपनी जड़ों तथा परंपरा का अपमान है और अपनी जड़ों तथा परंपरा से कटकर उन्नति तथा विकास अर्थहीन है।

संतोष श्रीवास्तव की 'मृग मरीचिका', कृष्ण सुकुमार की 'बंटवारा', रूप सिंह राठौड़ की 'पुस्तैनी नौकर', 'आदर्श की अर्थी', बानो सरताज की 'वारिस', 'गलती', 'दर–ब–दर' तथा 'एकला चलो रे', सुरेखा सिन्हा की 'सूनेपन का समीकरण', सावित्री रांका की 'मीता अबला नही थी', अंजु दुआ जैमिनी की 'सीली दीवार', 'खामाशी श्राप की' ओर 'सिसकते आंचल का फूल' नियति सप्रे की 'कीटनीवाली' आदि कहानियों में भी वृद्धावस्था की समस्याओं का रेखांकन हुआ है।

संदर्भ–सूची

1 डॉ वृंदा सिंह वृद्धावस्था जीवन की संध्याबेला, प्राक्कथन

2 सावित्री रांका, पन्ने जिंदगी के भूमिका पृष्ठ 10

3 डॉ. सरिता वशिष्ठ , हिन्दी कथा साहित्य में नारी विमर्ष, परिषद् पत्रिका, मार्च, 2005 पृष्ठ 215

4 विपाषा, जन, जून 2009, पृष्ठ 137

5 सावित्री रांका, पन्ने जिंदगी के पृष्ठ 40

6 वही ,पृष्ठ 40 – 41

7 संपादकीय, दैनिक जागरण, 9 मई, 2011

8 यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, वाह किन्नी वाह पृष्ठ 56

9 रूप सिंह राठौर, कोई है, पृष्ठ 74

10 डॉ बानो सरताज, चलो अब मर जायें पृष्ठ 32

11 डॉ बानो सरताज, चलो अब मर जायें पृष्ठ 11

12 विपाषा, जन, जून 2009, पृष्ठ 214

13 डॉ बानो सरताज, चलो अब मर जायें पृष्ठ 43

14 वही ,पृष्ठ 43

15 डॉ सुरेखा सिन्हा, उस धूप की छांव, पृष्ठ 87

16 वही ,पृष्ठ 87